CHETANA
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

First draft received: 12.06.2023, Reviewed: 18.06.2023, Accepted: 26.06.2023, Final proof received: 30.06.2023

इतिहास लेखन का बदलता स्वरूप और साहित्य के साथ अन्तर्सम्बन्ध : एक सर्वेक्षण

उमेश झा
एशोसिएट प्रोफेसर
इतिहास विभाग, रामानुजन कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
Email- umeshjha5@gmail.com, Mobile-8076964428

शोध सारांश

कहा जाता है कि साहित्य का संबंध कल्पनाओं से होता है जबकि इतिहास का संबंध वास्तविकताओं से। इसके बावजूद इन दोनों विधाओं के बीच आपसी लेन-देन एवं अन्तरमिलन के भी प्रगाढ संबंध रहे हैं।यही कारण है कि हमें पुर्व -आधुनिक रचनाओं में इन दोनों विधाओं के बीच भेद उतना प्रभावी नहीं दिखाई पड़ता। वास्तव में इतिहास और साहित्य के बीच विभेद की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी में हुई जब इतिहास लेखन पर वस्तुनिष्ठता का वर्चस्व बढता गया। परन्तु अब परंपरागत वस्तुनिष्ठता पर कई महत्वपूर्ण सवाल उठाते हुए इतिहास लेखन के क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इसी के साथ साथ अन्य विधाओं मसलन साहित्य के साथ इतिहास का संबंध भी नये सिरे से प्रगाढ़ हुआ है।

मुख्य शब्द : *कल्पना, यथार्थ, अन्तरमिलन, कालक्रम, इहलोक, अनुशीलन, अभिव्यक्त, प्रतिबिंबित, वस्तुनिष्ठता, दस्तावेज, अवधारणा, संवेदना, उत्तर आधुनिक विमर्श, प्रस्थापना आदि.*

प्रस्तावना

परंपरागत रूप से इतिहास और साहित्य दोनों ही विधाओं की अपनी अपनी विशिष्ट पहचान रही है। कहा जाता है कि साहित्य का संबंध कल्पनाओं से होता है जबकि इतिहास का संबंध यथार्थ और वास्तविकताओं से। परन्तु इसके वाबजूद इन दोनों विधाओं के बीच आपसी लेन- देश एवं अन्तरमिलन के भी प्रगाढ़ संबंध रहे हैं। यही कारण है कि हमें कई प्राचीन एवं मध्यकालीन रचनाओं में इतिहास और साहित्य के बीच भेद उतना प्रभावी नहीं दिखाई पड़ता है।कई लोगों का मानना है कि भारत में इतिहास लेखन की परंपरा नहीं रही है। यहां साहित्य तो प्रचुर है लेकिन उसे किसी कालक्रम में व्यवस्थित करके नहीं लिखा गया है। इसलिए आज भी हमारे इतिहास को किसी कालक्रम में व्यवस्थित करना एक मुश्किल काम साबित होता है। कारण के तौर पर कहा जाता है कि हमारी परंपरा 'इहलोक' में विश्वास नहीं करती, वह तो 'परलोक' की कामना करती है। अतः 'इहलोक' की गतिविधियों का ब्यौरा क्यों रखा जाए। इतिहासकार रोमिला थापर ने प्राचीन साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से अनुशीलन करते हुए उन्हें दो श्रेणियों में बांटा है: अभिव्यक्त इतिहास और अंतर्निहित इतिहास। अंतर्निहित इतिहास उसे कहते हैं, जिसके अन्दर से ऐतिहासिक चेतना को चुन- छांट कर निकालना पड़ता है, जैसे कि मिथक, महाकाव्य या वंशावली, जबकि अभिव्यक्त इतिहास में एक आत्म- सचेत ऐतिहासिक चेतना एवं अधिक प्रमाण प्रतिबिंबित होते हैं। हालांकि, प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास लेखन की तुलना आधुनिक इतिहास लेखन से नहीं की जा सकती। क्योंकि प्राचीन साहित्य में अतीत की जो समझ और प्रतिनिधित्व है, उससे आज के इतिहास लेखन की विधि, तकनीक और उद्देश्य में बहुत अंतर है। उदाहरण के लिए आधुनिक इतिहासकार, इतिहास और किंवदंती में गहरा अंतर देखते हैं जो अमूमन हमें पूर्व आधुनिक लेखन में देखने को नहीं मिलता। इस लेख का मुख्य उद्देश्य इतिहास लेखन के बदलते स्वरूप एवं साहित्य के साथ उसके संबंधों का सर्वेक्षण करना है। और विशेषकर इतिहास लेखन के क्षेत्र में साहित्य अध्ययन की शैलियों एवं विधियों की उपयोगी भूमिका को उद्घाटित करना है।

इतिहास लेखन का बदलता स्वरूप

वास्तव में इतिहास और साहित्य के बीच स्पष्ट विभाजन की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी में हुई जब यूरोप में इतिहास लेखन के सिलसिले में रांके और उनके अनुयायियों ने इतिहास को उपदेशात्मक बनाने का विरोध करते हुए इस बात पर बल दिया कि इतिहासकार का

दायित्व इतिहास को सिर्फ उस रुप में दिखाना है जैसा कि वह सचमुच था। इसके बाद से इतिहास लेखन पर लगातार वस्तुनिष्ठता हावी होता गया जिसे प्रत्यक्षवादियों (positivists) तथा अनुभववादियों (empiricists) ने और अधिक मजबूत बनाया। इसी के साथ साथ इतिहास और साहित्य के बीच की दूरियां भी बढ़ती गई। परन्तु अब प्रत्यक्षवादियों एवं अनुभववादियों द्वारा स्थापित इतिहास की बहुत सारी मान्यताओं और निश्चिताओं की धज्जियां उड़ चुकी हैं। परंपरागत वस्तुनिष्ठता पर कई महत्वपूर्ण सवाल उठाते हुए हाल में ऐतिहासिक अध्ययनों के क्षेत्र में अभूतपूर्व रुप से वृद्धि हुई है। इसी के साथ साथ अन्य विधाओं मसलन- समाजशास्त्र, मानव विज्ञान, साहित्य, भौगोलिक अध्ययन आदि के साथ इतिहास का संबंध भी नये सिरे से प्रगाढ़ हुआ है। ऐसा लगता है कि हमारे 'आज के अतीत' के हर छोटे बड़े झरोखे को प्रकाशित करने के लिए इतिहासकार बेचैन हैं, प्रयत्नशील हैं और इसलिए वे 'पक्की' (पहले से स्थापित माडल) से हटकर नवीन तौर तरीकों,नये नये तथ्यों,नये सवालों और नवीन शैलियों एवं नये शब्दों का इस्तेमाल करने लगे हैं।

नव इतिहास लेखन और साहित्य

इतिहास लेखन की नई परंपरा में अब साहित्य को एक 'अछूत' श्रोत नहीं माना जाता बल्कि उसके साथ एक गहरी अंतरंगता स्थापित हुई हैं। इतिहास लेखन में इसके कई महत्वपूर्ण फ़ायदे हैं। जैसा कि सुधीर चन्द्र कहते हैं साहित्य इतिहास का एक श्रोत ही नहीं है बल्कि यह इतिहास पर नये ढंग से विचार करने की प्रेरणा भी देता है। साथ ही समाजिक चेतना के जो पक्ष ऐतिहासिक दस्तावेजों से सामने नहीं आते वे साहित्य के माध्यम से पहचाने जा सकते हैं। अंतोनियो ग्रामशी जिन्होंने कला और साहित्य के सवालों पर गंभीरता से विचार किया है, की भी यह मान्यता है कि किसी भी जनसमुदाय की भाषा में उसकी जीवन की समग्र अवधारणा अभिव्यक्त होती है, और भाषागत परिवर्तनों का अध्ययन करके जिंदगी के बारे में उसके नजरिए में आ रही तब्दीलियों को जाना जा सकता है। साहित्य चूंकि इस भाषिक अभिव्यक्त से किसी भी दूसरी कला रुप की अपेक्षा अधिक निकट से जुड़ा है इसलिए किसी भी राष्ट्र की चेतना या संवेदना को सबसे अधिक प्रमाणिकता के साथ वही व्यक कर सकता है। उनके अनुसार इतिहास के किसी भी दौर में किसी भी नई सभ्यता की झलक सबसे पहले उस राष्ट्र की साहित्यिक अभिव्यक्त में दिखलाई पड़ती है।

उत्तर आधुनिक विमर्श और इतिहास

इतिहास और साहित्य के अन्तर्सम्बन्धों में उत्तर आधुनिकता (postmodern) के कुछ प्रस्ताव भी महत्वपूर्ण नजर आते हैं। इन प्रस्तावों में साहित्य को न सिर्फ एक श्रोत के रूप में बल्कि ऐतिहासिक रचनाओं को भी साहित्यिक रचनाओं की तरह ही पढ़े जाने का आग्रह किया जाने लगा है। तर्क यह है कि इतिहास की तरह साहित्य भी मनुष्य के द्वारा मनुष्य के लिए रचा गया एक 'वृतांत' है। एक ऐसा वृतांत जो 'तथ्य' और 'कल्पना' में भेद नहीं करता, जैसा कि इतिहासकार करते हैं। परन्तु वास्तव में इतिहासकार जिसे 'तथ्य' कहते हैं वह उनकी अपनी धारणाओं की उपज होती है और वह 'अतीत' जिसका इतिहासकार अध्ययन करते हैं, केवल उनकी अपनी रचना होती है। ऐसी कोई भी रचना उतनी ही वास्तविक या अवास्तविक हो सकती है जैसी साहित्यिक रचना।

इतिहास के इस उत्तर-आधुनिक विमर्श के दो मुख्य स्तंभ रहे हैं – फूको एवं देरिदा। इन दोनों विद्वानों ने इतिहास को इतिहासकारों के चंगुल से निकालने के तर्कों एवं पद्धतियों का विकास किया है। इनका मानना है कि इतिहास को जब हम इतिहासकारों के दृष्टिकोण से देखते हैं तब हम इतिहास को जानने के बजाय इतिहासकार के दिमाग से इतिहास को जानने का प्रयत्न करते हैं। जबकि अतीत को जानने के लिए इतिहासकार के दिमाग में जाने के बजाय उन लोगों के दिमाग में जाने की जरूरत होती है जिनके इतिहास को हमें जानना है। यहां प्रस्थापना के दृष्टि से भले ही फूको एवं देरिदा के तर्क न्यायसंगत और विवेकपूर्ण लगे परन्तु अपने प्रस्थापना के दावों को साकार करने के लिए वे जिस पद्धतिशास्त्र का सहारा लेते हैं उनमें कुछ मूलभूत कमियां हैं। सर्वप्रथम, वे इतिहासबोध के मिथकीय आख्यान और मिथकीय आख्यानों के इतिहासबोध को एक ही धरातल पर खड़ा कर देते हैं। द्वितीय, वे सत्यं और मत को एक ही पृष्ठभूमि में धकेल देते हैं। तृतीय, इस दृष्टि से इतिहास का होना या न होना निरर्थक हो जाता है।

साक्ष्य की सर्वोच्चता का सवाल

इतिहासकार हाब्सवाम ने ठीक ही कहा है कि इन उत्तर आधुनिक सैद्धांतिक बहसों में शामिल हुए बिना भी इतिहासकारों द्वारा अपने अनुशासन की बुनियाद का बचाव करना जरूरी है। यानी साक्ष्य की सर्वोच्चता का बचाव। अगर इतिहास की रचनाएं साहित्य की तरह ही कपोल कथाएं हैं तो जिस कच्ची सामग्री पर वे आधारित हैं वह सत्यापित किए जाने वाला तथ्य है। यही साहित्य और इतिहास के बीच मौलिक फर्क है। साहित्य की तरह इतिहास भी कुछ कुछ कल्पनाशील कला है लेकिन वह एसी कला है जो सच्चाईयां गढ़ती नहीं, कारणों की कल्पना नहीं करती, बल्कि विभिन्न प्रकार के श्रोतों एवं तथ्यों को संयोजित कर कारणों एवं सच्चाइयों की ख़ोज करती है।

इतिहास और साहित्य के बीच समरुपता

इतिहास और साहित्य दोनों विधाओं की समरूपता 'दास्तान -ए- बयां' (narrative) की है। इतिहासकार की रचना जीती है, जगाती है और सराही जाती है अपने दास्तान -ए- बयां के चलते और बयान करने के लिए जितनी तथ्यों और सबूतों की जरूरत होती है, उतनी ही शिल्प, कला, तथा शैली की भी। यही कारण है कि परंपरागत वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन में विवरण पर अधिक बल दिया गया जबकि साहित्य विवरण और विश्लेषण में कोई फर्क नहीं करता। । परन्तु अब जब इतिहास का क्षेत्र और स्वरुप बदला है, इसमें विवरण के माध्यम से विश्लेषण और व्याख्या पर बल दिया जाने लगा है। इसी के साथ साथ भाषा का महत्व भी इतिहासकारों के लिए बढ़ा है।

भाषाई संरचना के रूप में इतिहास और साहित्य

यहीं साहित्य के साथ अन्तर्सम्बन्ध इतिहासकारों के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि साहित्यकारो की सफलता ही भाषा की कसौटी पर मापी जाती है और इसलिए भाषा मात्र के प्रति संवेदनशीलता साहित्यकारो के लिए एक अनिवार्य शर्त बन जाती है। जबकि इसके बनिस्पत इतिहास लेखन में हम भाषा की शक्तियों को उतना अधिक सक्रिय नहीं पाते है। यहां हम यह भी स्पष्ट करते चले कि भाषा के दृष्टिकोण से इतिहासकारों की अपनी शैलियों पर अधिक विचार – विमर्श नहीं हुआ है जो कि 'साहित्य आलोचना' के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित परंपरा रही है। इन विचारों के आलोक में साहित्य के साथ अन्तर्सम्बन्ध स्थापित होने से इतिहासकार की प्रस्तुति की शैली, भाषा, वस्तु संयोजन आदि भी विश्लेषण के अहम मुद्दे हो जाते हैं। इन उपादानों का इस्तेमाल इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि कई बार प्रत्यक्ष रूप से अनैतिहासिक दिखने वाले उपादानों की लामबंदी इतिहास लेखन की मजबूरी हो जाती है।

स्पष्ट है कि भाषाई संरचना के बतौर इतिहास को उन तत्वों से फायदा हो सकता है जो साहित्य के अध्ययन में उपलब्ध हुए हैं। परन्तु जब हम इस दृष्टि से आधुनिक भारत में इतिहास लेखन और साहित्य के साथ उसके अन्तर्सम्बन्धों पर विचार करते हैं तो हमें एक विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारा साहित्य तो विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखा जाता रहा है, परंतु हमारा इतिहास ज्यादातर अंग्रेजी में ही लिखा गया है। यहां हम यह भी स्पष्ट करते चलें कि सिर्फ हिंदी ही नहीं बल्कि किसी भी भारतीय भाषा में ऐसा शोध परक कार्य करना आसान नहीं है क्योंकि ज्ञानोत्पादन पर अंग्रेजी के एकतरफा प्रभुत्व के कारण हमारी सभी भारतीय भाषाएं इस मामले में एक संस्थागत रक्ताल्पता से ग्रसित रही हैं। यही कारण है कि भारतीय इतिहास को हिन्दी में लिखने पढ़ने और शोध करने वाले शोधार्थियों के सामने कुछ नई दुश्वारियां खड़ी हो जाती हैं। उन्हें इतिहास रचने के साथ साथ हिन्दी में इतिहास लेखन की 'भाषा' और उसका स्वरूप क्या हो इस प्रश्न पर भी विचार करना पड़ता है। और इस प्रश्न पर विचार करने के लिए हमें हिन्दी के उन साहित्यकारो की रचनाओं से बड़े पैमाने पर प्रेरणा मिलती है जिन्होंने अपनी साहित्य में आंचलिक सामाजिक सांस्कृतिक अंतर्चेतना को अभिव्यक्त किया है।

साहित्य रचना पर इतिहास का प्रभाव

स्पष्ट है कि साहित्य के साथ इतिहास के इस अंतर्संबंध ने इतिहास लेखन को कई रुपों में प्रभावित किया है, परन्तु प्रभाव की यह प्रक्रिया एकांगी नहीं है, बल्कि हमें साहित्य रचना पर भी इतिहास का जबरदस्त प्रभाव देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह साहित्य का भी तेजी से ऐतिहासिककरण हुआ है। इतिहासकार हाब्सवाम जो इतिहास और साहित्य के बीच के फ़र्क पर काफी जोर देते हैं, भी इस प्रभाव को स्वीकार करते हैं। उन्हीं के शब्दों में 'आजकल उपन्यासकार अपनी कथावस्तु का आधार कल्पित तथ्यों के बजाय दस्तावेजी इतिहास को बनाने लगे हैं। इसके कारण ऐतिहासिक 'तथ्य' और 'कथ्य' के बीच की सीमा रेखा धुंधली होती जा रही है।

क्या साहित्य समाज का दर्पण होता है

वास्तव में बीसवीं सदी के आरंभ से ही साहित्य पर निरंतर इतिहास का प्रभाव बढ़ता गया। हिन्दी साहित्य में इसके फलस्वरूप 'यथार्थवाद' की शुरुआत हुई और प्रेमचंद सरीखे हिन्दी के महान साहित्यकार ने यह उद्घोषणा की कि 'कल्पना के गढ़े हुए आदमियों में हमारा विश्वास नहीं है, उनके कार्यों और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते। हमें इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि लेखक ने जो सृष्टि की है, वह प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर की गई है।' इस उद्घोषणा के साथ ही उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है।

इस प्रतिबिम्बधर्मी दृष्टि पर जोर इ. एच. कार जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार भी देते हैं। महान जर्मन इतिहासकार मीनेख का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा: "उसका जीवन और कार्यकाल काफी लम्बा था और अपने देश के अंदर घटित होनेवाली क्रांतियों तथा निर्णायक परिवर्तनों का वह साक्षी था। दरअसल हम एक के स्थान पर तीन मीनेख देखते हैं, उनमें से प्रत्येक एक विशेष ऐतिहासिक युग का प्रवक्ता है और उनकी तीन बड़ी-बड़ी रचनाओं में से एक के माध्यम से वह अपना ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।।उनके अनुसार एक व्यक्ति के रूप में मीनेख के विकास में किसी मनोवैज्ञानिक अथवा जीवनी लेखक की रुचि हो सकती है लेकिन इतिहासकार की रुचि उस प्रक्रिया पर है जिसके अंतर्गत मीनेख तीन या चार उत्तरोत्तर परस्पर विरोधी वर्तमान की कलाबाजियों को ऐतिहासिक अतीत के रूप में प्रतिबिंबित करता है।

क्या साहित्य सामाजिक संदर्भों को प्रभावित करता है-

स्पष्ट है कि समकालीन सामाजिक संदर्भ साहित्य को प्रभावित करते हैं और इसलिए साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब मिलता है। परन्तु इसके साथ साथ यह बात भी स्वीकार करनी चाहिए कि साहित्य भी कई रुपों में सामाजिक संदर्भों को प्रभावित करता है। साहित्यकार का उद्देश्य अपनी रचनाओं में 'समाज की स्थिति' का सतही चित्रण मात्र करने का नहीं होता बल्कि वह अपने मूल्यों और विचारों को भी चित्रित करता है। अतः इतिहासकार का दायित्व साहित्यिक रचनाओं में केवल ऐतिहासिक और सामाजिक प्रतिबिम्ब की खोज मात्र करना नहीं है बल्कि उन रचनाओं में अन्तर्निहित लेखक के मूल्यों और विचारों को भी स्पष्ट करना है। डी. लोवेन्थल ने ठीक ही कहा है कि किसी भी समाज विज्ञान का मुख्य उद्देश्य अनिवार्यतः उस अर्थ के मर्म की पहचान होनी चाहिए जो विभिन्न साहित्यिक रचनाओं के केन्द्र में विद्यमान रहता है। उनके अनुसार यह साहित्य के अध्ययनकर्ता की जिम्मेदारी है कि वह लेखक की काल्पनिक पात्रों की स्थितियों का संबंध उस ऐतिहासिक वातावरण से जोड़े जिससे वे लिए गये हैं। उसे विषयों और शैलीगत साधनों के वैयक्तिक समीकरणों को सामाजिक समीकरण में रुपांतरित करना पड़ता है। लोवेन्थल के अनुसार इस प्रकार के विश्लेषण से हमें उन केन्द्रीय समस्याओं को समझने में सफलता मिलेगी जिनसे समय समय पर उस समाज का सरोकार रहा है। और इस प्रकार से हम एक समाज विशेष का प्रतिबिम्ब उन लेखकों के माध्यम से निर्मित कर सकेंगे जिन्होंने अपनी रचनाओं में उसे रचा है।

वास्तव में इस दृष्टिकोण में एक गंभीर सच्चाई है और इतिहासकार चाहे तो साहित्य के साथ एक बेहतर संवाद स्थापित करके आधुनिक भारत का एक वैकल्पिक सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास लिख सकता है। उल्लेखनीय है कि आधुनिक भारत के इतिहास में ऐसे अनुसंधानों की शुरुआत हो चुकी है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रविन्द्र नाथ टैगोर, बंकिम चन्द्र चटर्जी, प्रेमचंद जैसे कुछ महत्वपूर्ण साहित्यकारों की रचनाओं को आधार बनाकर उस युग की सांस्कृतिक और बौद्धिक इतिहास के पुनर्लेखन की कोशिश हुई है। इन कोशिशों के फलस्वरूप कुछ उल्लेखनीय परिणाम उभरकर सामने आये हैं। सबसे महत्वपूर्ण उल्लेखनीय पहलू ये है कि उन्नीसवीं – बीसवीं सदी के ये बुद्धिजीवी औपनिवेशिक इतिहास लेखन के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखते थे। कहना न होगा कि औपनिवेशिक इतिहास लेखन वास्तव में भारत में ब्रिटिश शासन को उचित ठहराने और भारतीयों को सांस्कृतिक रूप से ग़ुलाम बनाने के प्रयास का एक औजार मात्र था। भारतीय विश्वविद्यालय के पहले स्नातक बंकिम चन्द्र ने बार बार भारतीय इतिहास की ब्रिटिश व्याख्या की कटु आलोचना की। उन्होंने यह सवाल भी उठाया कि हम अपना इतिहास स्वयं कब लिखेंगे। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने इसे और भी स्पष्ट तरीके से व्यक्त किया। उन्होंने लिखा कि हम अपनी मातृभूमि को ब्रिटिश प्रशासकों और इतिहासकारों द्वारा लिखे गए इतिहास में देख ही नहीं पाते हैं, जबकि दूसरे देशों में इतिहास उस देश की जनता के सामने देश की पहचान प्रस्तुत करता है। टैगोर ने भारत के इतिहास को महज राजनीतिक घटनाओं और शासकों के बीच सत्ता के लिए होने वाले संघर्ष से अलग हटकर देखने पर जोर दिया। उन्होंने भारतीय इतिहास की अपनी व्याख्या में इस पक्ष पर जोर दिया कि भारतीय इतिहास वास्तव में इतिहास की विभिन्न युगों का मिलन है, जो आक्रामक विरोधी शक्तियों के साथ संघर्ष, द्वंध और अन्तरमिलन की दास्तान है। रवीन्द्र नाथ टैगोर की दृष्टि में भारतीय इतिहास अनिवार्य रूप से

सामाजिक इतिहास है और इसीलिए यह बहुआयामी और अंतहीन इतिहास है। यह वो इतिहास है जो राजनीतिक उथल-पुथल की अनगिनत घटनाओं में भी अबाधित रहा है। उन्होंने विचारों के इतिहास के बारे में भी बात की और इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान को समझने के लिए हमें अतीत को अच्छी तरह से समझना होगा। इतना ही नहीं टैगोर ने खेती और जंगल क्षेत्र में उसके विस्तार का संस्मरण लिखा और जल संकट एवं विशेषकर नदी और पानी के साथ स्त्रियों के अभिन्न रिश्तों को उद्धृत किया। कहना न होगा कि आज पारिस्थितिकी और पर्यावरण का इतिहास दरअसल इसी पहलू का विस्तार है। हिन्दी के कई साहित्यकारों जैसे फनीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, राही मासूम रज़ा, श्रीलाल शुक्ल आदि की रचनाओं को आधार बनाकर हम अंचल विशेष का सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास लिख सकते हैं और इतिहास लेखन के स्वरूप एवं उसके क्षेत्र का और विस्तार कर सकते हैं।

निष्कर्ष

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है परन्तु इतिहासकार का उद्देश्य साहित्यिक रचनाओं में महज़ प्रतिबिम्ब की खोज मात्र करना नहीं है। बल्कि साहित्य के साथ अन्तरंग संबंध स्थापित करके अतीत में मानवीय क्रियाकलापों के उन पहलुओं को उद्घाटित करने में है जो अमूमन ऐतिहासिक दस्तावेजों से उद्घाटित नहीं हो पाते। सामूहिक सामाजिक वेदनाओं का इतिहास, हिंसा, दुख-तकलीफ, हर्ष और विषाद का इतिहास लिखने में निश्चय ही साहित्य के साथ अन्तर्सम्बन्ध से इतिहास लेखन को बल मिला है। आजकल भौतिक संदर्भों से रहित सांस्कृतिक इतिहास लेखन में साहित्य का उपयोग जोर-शोर से होने लगा है। परन्तु यहां हमें इतिहास के शिल्प को लेकर सचेत रहने की भी आवश्यकता है ताकि इतिहास का मिथकीयकरण और मिथक का ऐतिहासिककरण ना हो।

संदर्भ श्रोत

1. ई. एच. कार : इतिहास क्या है, दिल्ली, 1976
2. रणजीत गुहा: एन इंडियन हिस्ट्रीओग्राफी आफ इंडिया: ए नाइंटींथ सेंचुरी एजेंडा एण्ड इट्स इम्पलीकेशंस, कलकत्ता,1998
3. एरिक हाब्सवाम, इतिहासकार की चिंता, दिल्ली, 2007
4. शाहिद अमीन, ज्ञानेंद्र पांडेय : निम्नवर्गीय प्रसंग -2, दिल्ली,2002
5. सुधीर चन्द्र: दि आइडियल एण्ड दी रियल इन प्रेमचंद, एन.एम.एम.एल. , सेमिनार पेपर, 1980
6. सुधीर चन्द्र: सोशल ट्रांसफार्मेशन एण्ड क्रिएटिव इमैजिनेशन, दिल्ली,1984
7. अंतोनियो ग्रामशी: सेलेक्शन फ्राम दि प्रिज्न नोटबुक आफ अंतोनियो ग्रामशी, न्यूयॉर्क, 1974
8. मार्क ब्लाख: इतिहासकार का शिल्प, दिल्ली, 2005
9. एरिक हाब्सवाम: "दि रिवाइवल आफ नैरेटिव्स: सम कमेंट्स जो ज्योफ्री राबर्ट्स (सम्पादित) पुस्तक: दि हिस्ट्री एंड नैरेटिव्स रीडर, रूटलेज,2001, में संकलित
10. पीटर बर्क: हिस्ट्री एंड सोशल थ्योरी, कैम्ब्रिज,1992
11. लारेन्स लर्नर: दि फ्रंटियर्स आफ लिटरेचर, आक्सफोर्ड,1988
12. कार्लो गिन्सबर्ग: दि चीज ऐंड दि वर्मस, लंदन,1980
13. प्रेमचंद: "साहित्य का उद्देश्य, निर्मला जैन और प्रेमशंकर: आधुनिक हिन्दी समीक्षा, दिल्ली,1985
14. निर्मला जैन: साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, दिल्ली,1986
15. एल. लावेन्थल: लिटरेचर एंड द इमेज़ आफ मैन, बोस्टन,1957
16. सुदीप्तो कविराज: दि अनहैप्पी कांसशनेस: वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ऐंड दि फार्मेशन आफ नेशनलिस्ट डिस्कोर्स इन इंडिया, दिल्ली, 1995
17. निर्मल के. महतो: "पाठ भवन में इतिहास शिक्षण, शिक्षा विमर्श, जून – जुलाई , 2015
18. चंदन श्रीवास्तव: " पुराने प्रेमचंद के जरिये नया पाठ: हिन्दी की साहित्यिक संस्कृति और आधुनिकता, प्रतिमान, जुलाई – दिसंबर ,2017
19. अंबिकादत्त शर्मा और विश्वनाथ मिश्र: "मिथकीय आख्यान और इतिहासबोध, प्रतिमान, जुलाई- दिसंबर, 2017